वैदिक वाङ्मय में प्रकृति–पूजा

सम्पादक

डॉ. प्रभात कुमार सिंह

सहायक आचार्य–संस्कृत विभाग

स्वतंत्रता संग्राम सेनानी विश्राम सिंह

राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय

चुनार, मीरजापुर, उ.प्र.

परिमल पब्लिकेशन्स

दिल्ली

विषय–सूची

पृष्ठ

1. प्रकृति पूजा विषयक वेदोक्त चिन्तन – डॉ. ऋचा 1–14
2. ऋग्वेद में प्रकृति–पूजा – डॉ. प्रभात कुमार सिंह 15–26
3. वेदों में वर्णित प्रकृति स्वरूपिणी गो की महिमा डॉ. ऊदल कुमार 27–33
4. वेदों में प्रकृति–पूजा – सुनील कुमार विश्वकर्मा, अजय यादव 34–44
5. औपनिषदीय प्रकृति–पूजा – डॉ. संजय कुमार 45–59
6. ऋग्वेद में प्रकृति–पूजा – डॉ. धर्मेन्द्र कुमार 60–71
7. अथर्ववेद में प्रकृति–पूजा – डॉ. जेबा खान 72–77
8. प्रकृति आराधना की वैदिक दृष्टि – डॉ. तेज प्रकाश 78–88
9. वैदिक वाङ्मय में प्रकृति–पूजा डॉ. सत्येन्द्र नाथ तिवारी 89–97
10. वैदिक वाङ्मय में प्रकृति–पूजा – डॉ. शचि मिश्रा 98–106
11. वैदिक चिन्तन में प्रकृति संरक्षण – डॉ. रश्मि यादव 107–121
12. वैदिक यज्ञों में निहित प्रकृति–पूजा डॉ. वन्दना सिंह 122–130

औपनिषदीय प्रकृति–पूजा

डॉ. संजय कुमार*

उपनिषद् शब्द 'उप' नि उपसर्ग पूर्वक षद्लृ (षद्) धातु से क्विप् प्रत्यय लगाकर बनता है। आचार्य शंकर उपनिषद् शब्द के विषय में अपने भाष्य में कहते हैं– षद्लृ धातोर्विशरण गत्यवसादनार्थस्योपनिपूर्वस्य क्विपप्रत्ययान्तस्य रुपमुपनिषदिति उपनिषच्छाब्देन च व्याचिख्यासित–ग्रन्थप्रतिपाद्यवस्तुविषया विद्याच्यते। आचार्य शंकर के इस कथन के अभिप्राय को इस प्रकार समझा जा सकता है – उप नि उपसर्ग पूर्वक विशरण, गति, अवसादन तीन अर्थों वाली धातु से क्विप् प्रत्यय लगाकर बने उपनिषद् शब्द में प्रयुक्त विशरण धातु का अर्थ विनाश, गति का अर्थ प्राप्ति और अवसादन धातु का अर्थ शिथिल करना या समाप्त करना होता है। जिसके अनुसार उपनिषद् का अर्थ होता है जो समस्त अनर्थों को उत्पन्न करने वाले संसार के मूलभूत कारण अविद्यादि का विनाश करता है। जो ब्रह्म की प्राप्ति कराता है और जिसके परिशीलन से सांसारिक दुःख शिथिल हो जाते हैं उसे उपनिषद् कहते हैं। उपनिषद् शब्द की एक व्युत्पत्ति इस प्रकार भी की जाती है– उपनिषद्यते प्राप्यते ब्रह्मात्मभावोऽनया इति उपनिषद् अर्थात् जिससे ब्रह्म का साक्षात्कार किया जाय वह उपनिषद् है। वस्तुतः उपनिषद् ज्ञान–विज्ञान का मुख्य आधार है। भारत में परा और अपरा

---

*सहायक–आचार्य, संस्कृत विभाग,
डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर (म.प्र.)

विद्या का विशेष महत्त्व है। परा विद्या आत्म ज्ञान की विद्या है और अपरा विद्या सम्पूर्ण ज्ञान राशि स्वरूप वेद इत्यादि को माना जाता है। जिसके सम्बन्ध में मुण्डकोपनिषद् में कहा गया है–

द्वे विद्ये विदितव्ये इति ह स्मयद्ब्रह्मविदो वदन्ति पराचैवापराच। तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषमिति। अथ परा यया तदक्षरमीधिगम्यते।[1]

अर्थात् मनुष्य को जानने योग्य दो विधाएँ हैं– परा और अपरा। उन दोनों में से ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष इत्यादि अपरा विद्या के अन्तर्गत आते हैं तथा जिससे अक्षर, अविनाशी परब्रह्म का तत्त्व ज्ञान होता है वह परा विद्या है। अपरा विद्या ज्ञान की विद्या है और परा विद्या आत्म ज्ञान की विद्या है। अपरा से ही परा विद्या में प्रवेश होता है। यह परा विद्या उपनिषद् है। कहने का भाव यह है कि वेद–वेदांग के पश्चात् आरण्यक ग्रन्थों में जो आध्यात्मिक जिज्ञासा, चिन्तन, मनन और आत्मानुभूति की प्रक्रिया विकसित हुई उसी का सुव्यवस्थित एवं सार स्वरूप उपनिषदों में दृष्टिगोचर होता है। इसलिए उपनिषद् को परा विद्या के अन्तर्गत माना जाता है। उपनिषद् हमारे श्रेयमार्ग को प्रशस्त करती है। अपरा से परा विद्या में प्रवेश क्रमशः स्थूल से सूक्ष्म में प्रवेश के ही समान है। सम्पूर्ण वेद राशि स्थूल स्वरूप है लेकिन उपनिषद् सूक्ष्म है क्योंकि इसमें आत्म तत्त्व का विवेचन किया गया है। ठीक इसी प्रकार उपनिषदों में जो प्राकृतिक तत्त्व हैं वह स्थूल रूप में दिखाई देते हैं लेकिन उनका महत्त्व सूक्ष्म है। उपनिषदों में प्रकृति को पूजनीय माना गया है। उनका संरक्षण सम्वर्धन ही प्रकृति पूजा है। यह प्रकृति केवल शोभा की वस्तु नहीं है। यह हमारे तन–मन को पुलकित के साथ ही आत्मा को भी तृप्त करती है। इसके प्रति हमारा आत्मिक सम्बन्ध है। तभी तो उसके दर्शन मात्र से हमारा रोम–रोम

पुलकित हो जाता है। उसके सौन्दर्य पर मन का मोहित होना उनकी दिव्यता को प्रकट करता है। यही दिव्यता का भाव उन्हें पूजनीय बना देता है। यहाँ यज्ञ, वृक्ष, वनस्पति आदि सभी का जो साहचर्य दिखाया गया है वह उनमें दिव्यता प्रकट कर पूज्य भाव प्रकट करता है। इस रूप में कठोपनिषद् के प्रारम्भ में ही कहा गया है–

ॐ उशन् ह वै वासश्रवसः सर्ववेदसं ददौ।

तस्य ह नचिकेता नाम पुत्र आस।।[2]

अर्थात् यह प्रसिद्ध है कि यज्ञ का फल चाहने वाले वाजश्रवस् के पुत्र उद्दालक ने विश्वजीत यज्ञ में अपना सम्पूर्ण धन दान में दे दिया। उसका नचिकेता नामक एक पुत्र प्रसिद्ध था। यज्ञ त्याग का प्रतीक होता है जो सर्वस्व त्याग की भावना विकसित करता है। हमारे ऋषियों ने यज्ञ को श्रेष्ठ कर्म कहा है। यज्ञ के महत्त्व को प्रतिपादित करते हुए छान्दोग्योपनिषद् में कहा गया है–

एव ह वै यज्ञो योऽयं पवत एष ह यन्निदँ सर्व पुनाति।

यदेष यन्निदँ सर्व पुनाति तस्मादेष एव यज्ञस्तस्य मनष्च वाक्य वर्तनी।।[3]

अर्थात् यह जो चलता है निश्चय यज्ञ ही है। यह चलता हुआ निश्चय इस सम्पूर्ण जगत् को पवित्र करता है क्योंकि यह गमन करता हुआ इस समस्त संसार को पवित्र कर देता इसलिए यही यज्ञ है। मन और वाक् ये दोनों इसके मार्ग हैं। यहाँ मन और वाक् को यज्ञ का मार्ग कहने का तात्पर्य यह है कि यज्ञ के मन्त्रोच्चारण में प्रवृत्त वाणी और यथार्थ वस्तु के ज्ञान में प्रवृत्त मन ये दोनों यानि वाणी और मन वर्तनी के मार्ग हैं। जिनके द्वारा विस्तृत किया हुआ यज्ञ प्रवृत्त होता है उन्हें वर्तनी कहते हैं। श्रीमद्भगवद्गीता में यज्ञ के महात्म्य को बताते हुए कृष्ण ने कहा है–

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः।

अनेन प्रसविष्यध्वमेव वोऽस्त्विष्टकामधुक्।।

देवान्भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः।

परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमावाप्स्यथः।।[4]

अर्थात् प्रजापति ब्रह्मा ने कल्प के आदि में यज्ञ सहित प्रजाओं को रचकर उनसे कहा कि तुम लोग इस यज्ञ के द्वारा वृद्धि को प्राप्त होओ और यह यज्ञ तुम लोगों को इच्छित भोग प्रदान करने वाला है। तुम लोग इस यज्ञ के द्वारा देवता को उन्नत करो और वे देवता तुम लोगों को उन्नत करें। इस प्रकार निःस्वार्थभाव से एक दूसरे को उन्नत करते हुए तुम लोग परम कल्याण को प्राप्त हो जाओगे। इस कारण से यज्ञ के प्रति हमारा स्वतः पूज्य भाव उत्पन्न हो जाता है। जिससे मनुष्य का कल्याण व अभ्युदय होता है उसके प्रति अपने आप श्रद्धा उत्पन्न हो जाती है। यही श्रद्धा पूजा भाव में बदल जाती है–

अथ यद्यज्ञ इत्याचक्षते ब्रह्मचर्यमेव तद्ब्रह्मचर्येण

ह्योव यो ज्ञात तं विन्दतेऽथ यदिष्टमित्याचक्षते

ब्रह्मचर्येण तद्ब्रह्मचर्येण ह्येवेश्ट्वात्मानमनुविन्दते।[5]

अर्थात् लोक में जिसे यज्ञ कहते हैं वह ब्रह्मचर्य ही है क्योंकि जो ज्ञाता है वह ब्रह्मचर्य के द्वारा ही उस ब्रह्मलोक को प्राप्त होता है और जिसे इष्ट ऐसा कहते हैं वह भी ब्रह्मचर्य ही है, क्योंकि ब्रह्मचर्य के द्वारा पूजन करके ही पुरुष आत्मा को प्राप्त करता है। अतः पूज्य–पूजक भाव के रूप में यज्ञ महत्त्वपूर्ण है। इसके साथ आज दूषित पर्यावरण में भी यज्ञ का विशेष महत्त्व है। यज्ञ में प्रयुक्त तिल, तण्डूल, घी इत्यादि से पर्यावरण शुद्ध होता है। शुद्ध पर्यावरण से ही हमारा जीवन पुष्ट होता है तथा भौतिक संसाधन की समृद्धि का विधान यज्ञ भी से ही सम्भव माना गया है।

इसी तरह हमारे सभी प्राकृतिक तत्त्व पूज्य हो जाते हैं। इस पंचभूतात्मक सृष्टि में पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश का हमारे जीवन में विशेष महत्त्व है। वृक्ष–वनस्पति आदि से भी हम पालित–पोषित होते हैं। इसलिए सबसे हमारा पूजक–पूज्य का सम्बन्ध हो जाता है। यह सम्बन्ध मनुष्य का सदैव उपकार करता है। इस पूज्य भाव से मन–वाणी के साथ लौकिक एवं पारलौकिक दोनों जीवन पवित्र बन जाता है। इसलिए प्रकृति पूजा का विशेष महत्त्व उपनिषदों में प्रतिपादित है। आयुर्वेद में माना गया है कि जिस औषधि या वनस्पति का चिकित्सा के लिए उपयोग किया जाता उस पर श्रद्धा और विश्वास रखना आवश्यक होता है क्योंकि श्रद्धा और विश्वास में वह शक्ति होती है जो उसे आरोग्य सुख प्रदान करती है। उसे पूज्य बना देती है। छान्दोग्योपनिषद् में जलविषयक पाँच प्रकार की सामोपासना का उल्लेख करते हुए कहा गया है–

सर्वास्वप्सु पञ्चविधं सामोपासीत मेघो यत्संप्लवते स हिंकारोयद्वर्षति स प्रस्ताओ याः प्राच्यः रयन्दन्ते स उद्गीथो याः प्रतीच्यः स प्रतिहारः समुद्रोनिधनम्।[6]

अर्थात् सब प्रकार के जलों में पांच प्रकार के साम की उपासना करें। मेघ जो घनीभाव को प्राप्त होता है, वह हिंकार है, वह बरसता है, वह प्रस्ताव है जो नदियाँ पूर्व की ओर बहती है वह उद्गीथ है तथा जो पश्चिमी की ओर बहती है वह प्रतिहार है और समुद्र निधन है। आगे पुनः उसके महत्त्व को बताते हुए कहा गया है– न हाप्सु प्रैत्यप्सुमान्भवति य एतदेवं विद्वान्सर्वास्वप्सु पञ्चविधं सामोपास्ते।[7] अर्थात् जो इसे इस प्रकार जानने वाला पुरुष सब प्रकार के जलों में पञ्चविध साम की उपासना करता है। वह जल में नहीं मरता है। यहाँ वृष्टि विषयक पाँच प्रकार की उपासना भी बतलाई गयी है– वृष्टौ पञ्चविधं सामोपासीतपुरोवातो हिंकारो मेघो जायते स प्रस्तावो वर्षति स उद्गीथो विद्योतते स्तनयति स प्रतिहारः।[8] अर्थात् वृष्टि के

पाँच प्रकार के साम की उपासना करें यह बात बतलाई गयी है। पुनः छान्दोग्योपनिषद् में ऋतुविषयक पाँच प्रकार की सोमापासना की गयी है।[9] जो भारतीय ऋतु विज्ञान की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। वृहदारण्यक उपनिषद् में जल तत्त्व के विषय में कहा गया है– इमा आपः सर्वेषां भूतानां मध्वासामपां सर्वाणि भूतानि मधु यष्चायमास्वप्सु तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषो यष्चायमध्यात्मं रैत सस्तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषोऽयमेव स योऽयमात्मेदममृतमिदँ ब्रह्मेदं सर्वम्।[10]

अर्थात् ये जल समस्त भूतों के मधु हैं और समस्त भूत इन जलों के मधु हैं। इन जलों में यह तजोमय अमृतमय पुरुष है और जो यह अध्यात्म रैतस तेजोमय अमृतमय पुरुष है यही वह है जो कि वह आत्मा है। यह अमृत है, यह ब्रह्म है, यह सर्व है। अतः जल पूज्य है। जल को जीवन का पर्याय माना जाता है। यानि जल है तो जीवन है। जल में विष्णु का वास है, इसलिए विष्णु को जलाशयी कहा जाता है। हमारी सम्पूर्ण सृष्टि जलमय सृष्टि है। सृष्टि के आदि में जल ही जल था। जल के महत्त्व को प्रतिपादित करते हुए ऐतरयोपनिषद् में कहा गया है– सोऽपोऽभ्यतपत्ताभ्योऽभितप्ताभ्यो मूर्तिरजायत। या वै सा मूर्तिरजायतन्नं वै तत्।[11]

अर्थात् वह परमात्मा विचार करके जल को तपाया। अपने संकल्प मात्र से उसमें उत्पन्न किया। परमात्मा के संकल्प द्वारा संचालित हुए उन सूक्ष्म महाभूतों से मूर्ति प्रकट हुई। यानि उनका स्थूल रूप उत्पन्न हुआ। वह मूर्ति अर्थात् इन पाँच महाभूतों का स्थूल रूप उत्पन्न हुआ वही अन्न देवताओं के लिए भोग्य है। मुण्डकोपनिषद् में बताया गया है कि परमेश्वर से समस्त समुद्र और पर्वत उत्पन्न हुए हैं इन्हीं से निकलकर अनेक आकार वाली नदियाँ वह रही हैं। इन्हीं से समस्त औषधियाँ और वह रस भी उत्पन्न हुआ है जिससे पुष्ट हुए शरीरों में वे सबके अन्तरात्मा परमेश्वर उन सब प्राणियों की आत्मा के सहित इन–उनके हृदय में रहता है।[12] इस प्रकार जो परमेश्वर के

सबके हृदय में विराजमान की अवधारणा है वह भी स्पष्ट होती है। क्योंकि यहाँ जो कुछ है और जो कुछ दिखाई दे रहा है वह सब ईश्वरमय ही है जिसके कारण सृष्टि का प्रत्येक कण पूज्य हो जाता है। अथर्ववेद इसका उदाहरण है जहाँ पर प्रत्येक व्यौहार में आने वाली वस्तु की पूजा की गयी है। उसी रूप में जल भी है। नदियों के जल के संरक्षण और सम्वर्धन की दृष्टि से ऋग्वेद में इन्द्र के अनेक प्रसंग भी मिलते है जिसका मात्र एक उद्देश्य उसके पूज्य भाव को ही प्रकट करना है। इस भाव को व्यक्त करने के लिए ही वेदों में भी नदियों को सदा प्रवाहित होने की बात कही गयी है।

पृथ्वी के सम्बन्ध में यहाँ बताया गया है कि वह समस्त भूतों का मधु है। यथा– इयं पृथिवी सर्वेषां भूतानां मध्यवस्यै पृथिव्यै सर्वाणि भूतानि मधु यष्चायमस्यां पृथिव्यां तेजोमयाऽमृतमयः पुरुषो यष्चामयध्यात्मँ शरीरस्तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषोऽयमेव स योऽयमात्मेदमतष्तमिदँ ब्रह्मेदंसर्वम्।[13]

अर्थात् यह पृथ्वी समस्त भूतों का मधु है और सब भूत इस पृथिवी के मधु है। इस पृथिवी में जो यह तेजोमय अमृतमय पुरुष है और जो अध्यात्मशरीर तेजोमय अमृतमय पुरुष है यही वह जो कि यह आत्मा है। यह अमृत है, यह ब्रह्म है, यह सर्व है। अथर्ववेद में पृथ्वी का माता और पूज्या कहा गया है।[14] मुण्डकोपनिषद् में पृथ्वी के सम्बन्ध में ''पृथिवी विश्वस्य धारिणी'' कहा गया है। यह पृथ्वी ही सम्पूर्ण प्राणियों को धारण की हुई है।[15] पृथ्वी को रत्नगर्भा भी कहा गया है। यही पृथ्वी सबका भरण–पोषण करती है। अन–जल संयोजिका पृथ्वी है। इसलिए वह पूज्या है। पृथ्वी का सम्बन्ध सभी पदार्थों से है। जो भी पदार्थ हम देखते है या व्यवहार में लाते है वह सब पृथ्वी है। एक संग्रह में उसके तीन स्वरुप बतलाये गये हैं– शरीर, इन्द्रिय और विषय। इसलिए शरीर, इन्द्रिय और मिट्टी, पथर, चट्टान आदि सभी पृथ्वी है। वायु भी उपनिषदों में पूज्य माना गया है। जिसके सम्बन्ध

में छान्दोग्यपनिषद् में कहा गया है– अयं वायुः सर्वेषां भूतानां मध्वस्य वायोः सर्वाणि भूतानि मधु यष्चायमस्मिन्वायौ तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषों यष्चायम् ध्यात्मं प्राणस्तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषोऽयमेव स योऽयमात्मेदममृतमिदँ ब्रह्मोदं सर्वम्।[16]

अर्थात् यह वायु समस्त भूतों का मधु है और समस्त भूत इस वायु के मधु हैं। इस वायु में जो यह तेजोमय अमृतमय पुरुष है और जो यह अध्यात्मप्राणरुप तेजोमय अमृतमय पुरुष है यही वह है जो यह आत्मा है वह अमृत है, यह ब्रह्म है, यह सर्व है। वायु का भी हमारे जीवन में विशेष महत्त्व है। हम बिना वायु के एक क्षण भी जीवित नहीं रह सकते है। वायु जीवन्तता का सूचक है वह हमारे जीवन का वह महत् भाग है जो सदैव हमें संरक्षण एवं सम्वर्धन प्रदान करता है। वायु को देवता माना गया है। अतः वायु की पूजा करना मनुष्य मात्र का कर्त्तव्य है। वायु किसी के साथ भेद नहीं करता है वह समान भाव से सभी को प्राण वायु प्रदान करता है। यह उसका समभाव ही उसे दैव रूप में मण्डित कर देता है। ऐतरेयोपनिषद् में कहा गया है कि– वायुः प्राणो भूत्वा नासिके प्राविशद्।[17] अर्थात् वायुदेवता प्राण बनकर नासिका के छिद्रों में प्रवेश करते हैं। उनका प्रवेश ही सम्पूर्ण शरीर को चैतन्यता से भर देता है। वायु के विषय में कहा जाता है कि जो वृक्ष एवं जल को कम्पित करने का हेतु है वह वायु है परन्तु जो शरीर के भीतर संचरण करती है ऐसी उस वायु का प्राण वायु कहा जाता है। वह प्राण वायु यद्यपि एक है तथापि पाँच रूपों में कार्य करने के कारण पाँच हो जाते हैं– प्राण, अपान, उदान, व्यान और समान।

उपनिषद् वामङ्य में अग्नि को भी प्रकृति के महत्त्वपूर्ण अंग के रूप में स्थापित किया गया है। अग्नि सभी भौतिक और अभौतिक तत्त्वों का नियामक है। अग्नि पिता के समान सबको पालता है। इसके सम्बन्ध में वृहदारण्यकोपनिषद् में कहा गया है– अयमिग्नः सर्वेषां

भूतानां मध्वस्याग्नेः सर्वाणि भूतानि मधु यश्चायमस्मिन्नग्नौ तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषो यश्चायमध्यात्मं वाङ्मयस्तेजो– मयोऽमृतमयः पुरुषोऽयमेव स योऽयमात्मेदममृतमिदं ब्रह्मेदँ सर्वम्।[18]

अर्थात् यह अग्नि समस्त भूतों का मधु है और समस्त भूत इस अग्नि के मधु हैं। इस अग्नि में जो यह तेजोमय अमृतमय पुरुष है और जो यह अध्यात्म वाङ्मय तेजोमय अमृतमय पुरुष है, यही वह है जो कि यह आत्मा है, यह अमृत है, यह ब्रह्म है, यह सर्व है। कठोपनिषद् में अग्नि के विषयों में पूछे जाने पर यमराज के द्वारा स्वर्ग के साधनभूत अग्नि के विषय में बताया जाता है जो अग्नि नचिकेता नाम से प्रसिद्ध होती है।[19] कठोपनिषद के ही एक स्थल पर अग्नि के महत्त्व को प्रतिपादित करते हुए कहा गया है कि जिस प्रकार गर्भिणी स्त्री के द्वारा धारण किया हुआ शुद्ध अन्न–पानादि से परिपुष्ट बालक गर्भ में छिपा रहता है। उसी प्रकार सर्वज्ञ अग्निदेवता अधर और उत्तर अरिण के भीतर छिपे हुए तथा अग्नि विद्या के जानने वाले, प्रयत्नशील, सावधान, श्रद्धालु, सब प्रकार की आवश्यक सामग्रियों के सम्पन्न मनुष्यगण प्रतिदिन जिनकी स्तुति और आदर किया करते हैं वे अग्नि देवता सर्वज्ञ परमेश्वर के ही प्रतीक हैं। नचिकेता! यही तुम्हारे पुछे गये प्रश्न के ब्रह्म हैं[20] मुण्डकोपनिषद् में भी अग्नि के देवत्त्व रूप एवं महिमा को वर्णन किया गया है। वहाँ बताया गया है कि अग्नि की चिनगारियों की भाति ब्रह्म से जगत् की उत्पत्ति और उसी में लय हो जाता है। यहाँ द्युलोक को ब्रह्म का मस्तक, चन्द्रमा और सूर्य को नेत्र समस्त दिशाएँ कान, नाना छन्द और ऋचाओं के रूप में वेद, वायु को प्राण तथा और पृथ्वी को ब्रह्म का पैर बताया गया है।[21] ईशावास्योपनिषद में अग्नि की स्तुति करते हुए कहा गया है–

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विष्वानि देव वयुनानि विद्वान।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नमउक्तिं विधेम।।[22]

अर्थात् हे अग्नि देवता! मैं अब अपने परम प्रभु के यहाँ पहुँचना और उन्हीं के पास रहना चाहता हूँ। आप शीघ्र ही मुझे परम सुन्दर मङ्गलमय उत्तरायणमार्ग से भगवान के परमधाम पहुँचा दीजिए। आप मेरे कर्मों को जानते हैं। मैने जीवन भर भगवान की भक्ति की है और उनकी कृपा से उनके दिव्य स्वरूप का दर्शन और मन्त्रोच्चारण कर रहा हूँ। सभी प्रतिबन्धकों को दूर कीजिए। आपको नमस्कार है। इन्हीं दिव्य गुणों के कारण अग्नि पूजनीय हैं।

वृहदारण्यकोपनिषद् में आकाश के सम्बन्ध में बतलाया गया है– अयमाकाषः सर्वेषां भूतानां मध्वस्याकाशस्य सर्वाणि भूतानि मधु यष्चायमस्मिन्नाकाषे तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषो यष्चायमध्यात्मं हृद्याकाषस्तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषोऽयमेव स योऽयमात्मेदममृतमिदँ ब्रह्मेदं सर्वम्।[23]

अर्थात् यह आकाश समस्त भूतों का मधु है तथा समस्त भूत इस आकाश के मधु हैं। यह जो इस आकाश में तेजोमय अमृतमय पुरुष है और जो यह अध्यात्म हृदयाकाशरुप तेजोमय अमृतमय पुरुष है, यही वह है जो कि यह आत्मा है, यह अमृत है, यह ब्रह्म है यह सर्व है। इस प्रकार यहाँ पंचभूतात्मक सृष्टि के व्यष्टि को समष्टि के रूप में उपनिषदों में प्रतिपादित किया गया है। ये पन्च महाभूत तात्त्विक रूप से एक ही समष्टि स्वरूप है। ये आत्मा हैं और यही ब्रह्म भी हैं। अतः ये सभी पूज्य हैं। हमारे यहाँ आकाश को शब्द का आश्रय माना गया है और शब्द ब्रह्म है इसलिए शब्द के आश्रय आकाश को भी पूज्य माना गया है। आकाश और मेघ अर्थात् बादल आनन्द के प्रतीक स्वरूप हैं।

वृहदारण्यकोपनिषद् में आदित्य की स्तुति करते हुए कहा गया है– अयमादित्य सर्वेषां भूतानां मध्वस्यादित्यस्य सर्वाणि भूतानि मधु यष्चायमस्मिन्नादित्ये तेजोमयाऽमृतमयः पुरुषो यष्चामयध्यात्मं

चाक्षुषस्तेजोमयाऽमृतमयः पुरुषोऽयमेव स योऽयमात्मेदममृतमिदँ ब्रह्मेदं सर्वम्।[24]

अर्थात् यह आदित्य समस्त भूतों का मधु है तथा समस्त भूत इस आदित्य के मधु हैं। यह जो इस आदित्य में तेजोमय अमृतमय पुरुष है और जो यह अध्यात्म चाक्षुष तेजोमय अमृतमय पुरुष है यही वह है जो कि यह आत्मा है, यह अमृत है यह ब्रह्म है। इसी रूप में वृहदारण्यकोपनिषद् में चन्द्र के महत्त्व का भी प्रतिपादन किया गया है–

अमं चन्द्रः सर्वेषां भूतानां मध्वस्य चन्द्रस्य सर्वाणि भूतानि मधु यष्चायमस्मिँष्चन्द्रे तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषो यष्चायमध्यात्मं मानसस्तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषोऽयमेव स योऽयमात्मेदममृतमिदँ ब्रह्मेदं सर्वम्।[25]

अर्थात् यह चन्द्रमा समस्त भूतों का मधु है और समस्त भूत इस चन्द्रमा के मधु हैं यह जो इस चन्द्रमा में तेजोमय अमृतमय पुरुष है और जो यह अध्यात्म मनः सम्बन्धी तेजोमय अमृतमय पुरुष है यही वह है जो कि यह आत्मा है। यह अमृत है, यह ब्रह्म है, यह सर्व है। इस तरह यहाँ सभी प्राकृतिक तत्त्वों के एक रूप से प्रतिष्ठित किया गया है। ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में भी कहा गया है कि उस विराट पुरुष के मन से चन्द्रमा उत्पन्न हुआ, उसकी आँख से सूर्य उत्पन्न हुआ, कान से वायु तथा प्राण और मुख से अग्नि उत्पन्न हुआ।[26] यही है ब्रह्माण्ड का पिण्ड से जुड़ना। संसार का सब पदार्थ इसी ब्रह्मा से निःसृत हैं, अतः सभी उसी के समान है। सब पदार्थों में ब्रह्म का ही बोध करना चाहिए। सभी पदार्थ ब्रह्म के ही समान पूजनीय है। सबमें ईश्वर व्याप्त है। कहा जाता है कि कण–कण में ईश्वर का वास होता है। सृष्टि के सभी तत्त्व में ईश्वर का अस्तित्त्व है। अतः वैदिक संस्कृति में प्रकृति पूजा का विधान किया गया है। अन्य प्राकृतिक

घटकों के रूप में दिशाएँ[27], विद्युत[28], मेघ[29] आदि का प्रतिपादन भी समष्टि के रूप में ही किया गया है। मेघ हमारे आनन्द का प्रतीक है। आषाढ़ मास में जब कृषक काले कजरारे मेघ को आकाश में देखता है तो उससे अपने खेतों में पर्याप्त वर्षा करने के लिए प्रार्थना करता है। संस्कृत साहित्य के अन्य स्थलों पर भी मेघ को प्रेम और वियोग के रूप में दर्शाया गया है। यहाँ सभी प्राकृतिक तत्त्व एक है। सभी मानव मात्र के परम उपकारक हैं अतः सभी पूजनीय हैं। छान्दोग्योपनिषद् में नदी[30], वृक्ष[31], न्योग्रधफल[32] की प्रतिष्ठा बतलाई गयी है। यहाँ उनके संरक्षण–सम्वर्धन के लिए प्रेरणा प्रदान की गयी है। हमारी वैदिक संस्कृति में अनेक वृक्षों की पूजा की जाती है। पीपल, गुबर, आम आदि ऐसे वृक्ष हैं जो हमारे लिए बहुत उपयोगी हैं। तुलसी नीम के औषधीय गुण से भला कौन परिचित नहीं है। सभी हमारे लिए पूजनीय और वन्दनीय हैं। इनके पूजा, अर्चना का मूलोद्देश्य उनका संरक्षण और सम्वर्धन करना ही है। पंचमहाभूतों के सम्बन्ध में श्वेताश्वतरोपनिषद् में कहा गया है–

पृथ्व्यप्तेजोऽनिलखे समुत्यिते पञ्चात्मके योगगुणे प्रवृत्ते।

न तस्य रोगी न जरा न मृत्युः प्राप्तस्य योगाग्निमयं शरीरम्।।[33]

अर्थात् ध्यानयोग का साधन करते–करते जब पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश इन पाँच महाभूतों का प्रत्यान हो जाता है यानि जब साधक का इन पांच महाभूतों पर अधिकार हो जाता है। इन पाँचों महाभूतों से सम्बन्ध रखने वाली योग विषयक पाँचों सिद्धियाँ प्रकट हो जाती हैं। उस समय योगाग्निमय शरीर को प्राप्त कर लेने वाले उस योगी के शरीर में न तो रोग होता है न बुढ़ापा आता है और न उसकी मृत्यु ही होती है। यहाँ यह भाव पंचमहाभूतों का सृष्टिगत भाव है। वेदान्त में समष्टि को ब्रह्म का स्वरूप माना गया है।

वृक्ष–वनस्पति, पशु–पक्षियों को भी उपनिषदों में पूज्य रूप में

प्रतिपादित किया गया है। सबके प्रति संरक्षण एवं संवर्धन का भाव व्यक्त किया गया है। यही भाव हमें प्रकृति पूजा की ओर प्रवृत्त करती है। जीवात्मा और परमात्मा रूप से वृक्ष पर बैठे हुए दो पक्षियों का उल्लेख करते हुए कहा गया है–

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।

तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनष्नन्नन्यो अभिचाकषीति।।[34]

अर्थात् किसी वृक्ष की शाखा पर स्थित मित्ररूप में दो पक्षी हैं। उनमें से एक स्वादिष्ट फल का भोक्ता है तथा दूसरा केवल दूर से अवलोकन मात्र से सन्तुष्ट रहता है। कहने का अभिप्राय यह है कि यह मनुष्य शरीर मानो एक पीपल का वृक्ष है। ईश्वर और जीव जब ये दोनों सदा साथ रहने वाले दो मित्र मानों दो पक्षी हैं। ये दोनों इस शरीर रूप वृक्ष में एक साथ एक ही हृदयरूप घोंसले में निवास करते हैं। शरीर रहते हुए प्रारब्धानुसार जो सुख–दुःख रूप कर्मफल प्राप्त होते हैं वे ही मानो इस पीपल के फल हैं। इन फलों को जीवात्मारुप एक पक्षी तो स्वादपूर्वक खाता है। अर्थात् हर्ष शोक का अनुभव करते हुए कर्मफल को भोगता है। दूसरा इस शरीर में प्राप्त हुए सुखःदुःख को भोगता नहीं केवल उसका साक्षी बना रहता है। परमात्मा की भाँति जीवात्मा भी इनका द्रष्टा बन जाय तो फिर उससे हमारे कोई सम्बन्ध शेष नहीं बचता है। यहाँ पर सम्पूर्ण प्रकृति पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, सूर्य, चन्द्र, वृक्ष और वनस्पति आदि को जीव और परमात्मा के रूप में ही चित्रित किया गया है। अतः सबमें एक तरह से ईश्वर विद्यमान है। वैसे भी पीपल इत्यादि वृक्ष को पूज्य माना गया है। उसमें देवता इत्यादि का वास माना गया है। उसी रूप में पक्षी इत्यादि को भी स्वीकार किया जाता है। इसलिए उपनिषदों की सम्पूर्ण प्रकृति में पर्वत, पठार, वृक्ष, वनस्पति, नदी, जल, वायु, पृथ्वी, अग्नि, आकाश आदि सभी तत्त्वों में ब्रह्म ही उपस्थित और ब्रह्म का स्वरूप ही

प्रतिपादित किया गया है। जो हमारे लिए सदैव पूज्य है।

सन्दर्भ

1. मुण्डकोपनिषद्, 1.1.4–5
2. कठोपनिषद, 1.1.1
3. छान्दोग्योपनिषद्, 4.17.1
4. श्रीमद्भगवद्गीता, 3.10–11
5. छान्दोग्योपनिषद्, 8.5.1
6. वही, 2.4.1
7. वही, 2.4.2
8. वही, 2.3.1
9. वही, 2.5.1
10. वृहदारण्यकोपनिषद्, 2.5.2
11. एतरेयोपनिषद्, 1.3.2
12. मुण्डकोपनिषद्, 2.1.9
13. वृहदारण्यकोपनिषद्, 2.5.3
14. अथर्ववेद,पृथ्वीसूक्त
15. मुण्डकोपनिषद्, 2.1.3
16. वृहदारण्यकोपनिषद्, 2.5.4
17. एतरेयोपनिषद्, 1.2.4
18. वृहदारण्यकोपनिषद्, 2.5.3
19. कठोपनिषद, 1.1.15–19
20. वही, 2.1.8
21. मुण्डकोपनिषद्, 2.1.4
22. ईशावास्योपनिषद्, 8
23. वृहदारण्यकोपनिषद्, 2.5.10

24. वही, 2.5.5
25. वही, 2.5.7
26. ऋग्वेद, 10.90.12
27. वृहदारण्यकोपनिषद्, 2.5.6
28. वही, 2.5.8
29. वही, 2.5.9
30. छान्दोग्योपनिषद्, 6.10.1
31. वही, 6.11.1
32. वही, 6.12.1
33. श्वेताश्वतरोपनिषद, 2.12
34. वही, 4.6